ISSN No. : 2394-0344 **REMARKING :** VOL-1 * ISSUE-5*October-2014

जलवायु परिवर्तन और पर्यावरण संरक्षण

रंजीत सिंह बुधानिया
अध्यापक,
भूगोल विभाग
गवरमेन्ट लोहिया कॉलेज
चुरू राज

सारांश

मुख्य शब्द : Please Add Some Keywords

प्रस्तावना

जलवायु परिर्वतन आज वैश्विक चिंता का विषय बन चुका है। पिछले कुछ वर्षों में वैश्विक जलवायु तीव्रता से परिवर्तित हुई है। इस परिवर्तन का मुख्य कारण मानवीय विकास की अन्धाधुन्ध प्रक्रिया से है जो हरित गृह प्रभाव से उत्पन्न हुआ तथा विभिन्न विषैली गैसों को वातावरण में उडेला गया है। जो मानव सभ्यता के अस्तित्व के लिए अभिशाप बन चुका है। स्थानीय, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक सीमाओं को चीर कर जीवन को चुनौति दे रही इस गंभीर समस्या से निपटने के लिए वैश्विक चिंताओं का दौर जारी है। तथा सरकार द्वारा स्थानीय, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मेलन एवं कानून समय समय पर होते रहे है। लेकिन वे पूर्ण तरह किसी भी देश पर लागू नही किये गये है। जो आज ग्लोबल स्तर पर शोचनीय मुद्दा है।

उद्देश्य

1. वैश्विक स्तर पर जलवायु परिवर्तन के कारण और प्रभावों का अध्ययन करना।
2. जलवायु परिवर्तन सम्बन्धी राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का अध्ययन करना।
3. जलवायु परिवर्तन के सम्मेलनों के बाद की वैश्विक स्थिति का आकलन करना और भावी सुझाव प्रस्तुत करना।

परिकल्पनाऐं

1. जलवायु परिवर्तन के कारण पर्यावरण प्रदुषण की समस्या निरन्तर बढ़ रही है।
2. जलवायु सम्बन्धी सम्मेलनों एवं कानूनों का कढ़ाई से पालन नहीं किया जा रहा है।

विधितंत्र एवं आँकड़ों का संकलन

प्रस्तुत शोध पत्र में आँकड़ों का संकलन भारत सरकार एवं प्रमुख राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों से किया गया है। तथा शोध पत्र की व्याख्या में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्र–पत्रिकाओं एवं विषय विशेषज्ञों की जानकारी ली गई है।

जलवायु परिवर्तन से आशय एवं इसके कारण

जलवायु परिवर्तन से तात्पर्य तापमान में वृद्धि से है, विश्व भर में हो रहे जलवायु परिवर्तनों के मूल में भी तापमान ही है इसे ही ग्लोबल वार्मिंग का नाम दिया गया है ग्लोबल वार्मिंग वास्तव में 18 वीं सदी की औद्योगिक क्रांति का परिणाम है।धरती का औसत तापमान 15 डिग्री सेल्सियस रहता है जो पिछले सौ सालों में 0.5 डिग्री बढ़ा है इस हिसाब से उसे इस सदी में प्रतिवर्ष 0.005 डिग्री बढ़ना था, लेकिन 1998 में इसमें 0.17 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि देखी गई, अगर धरती का तापमान मौजूदा दर से ही बढ़ता रहा तो सन् 2030 तक इसमें 2 से 2.8 डिग्री और इस सदी के अंत तक 6 डिग्री सेल्सियस तक की बढ़ोतरी हो सकती है अमेरिका के मेसाचुसेस्ट्स इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी के अनुसार कुछ वर्षों पहले तक माना जा रहा था कि वर्ष 2100 तक तापमान करीब 4 डिग्री बढ़ेगा, लेकिन अब यह वृद्धि 9 डिग्री हो सकती है इसका कारण यह है कि ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन मे अपेक्षा से ज्यादा

वृद्धि इसके अतिरिक्त समुद्र के Co_2 अवशोषण की क्षमता जितनी मानी गई, वह भी उससे काफी कम साबित हुई, स्पष्टतया आगामी कुछ दशकों में हमें तापमान वृद्धि तथा ओजोन परत के क्षरण दोनों समस्याओं से झूझना पड़ सकता है।

ओजोन क्षरण एवं जलवायु परिवर्तन

ओजोन परत के अभाव में अथवा इसके ओजोन परत के अभाव में अथवा इसके क्षीण होने की स्थिति में पराबैंगनी किरणें पृथ्वी की सतह पर पहुचेंगी, जिससे इनकी अत्यधिक ऊर्जा से सर्वत्र व्यापक उष्णता व्याप्त होकर सम्पूर्ण जीवमण्डल को समाप्त करने की और अग्रसर हो जाएगी पराबैंगनी किरणों के दुष्परिणामस्वरूप शरीर की प्रतिरोधक क्षमता का ह्रास होना, त्वचा कैंसर, नेत्र सम्बन्धी रोग तथा वनस्पतियों की समाप्ति आदि खतरे उत्पन्न होंगे ओजोन परत को सर्वाधिक क्षति क्लोरीन गैस से होती है, किन्तु यह मुक्त अवस्था में नहीं पाई जाती है, क्लोरोफ्लोरोकार्बन, ब्रोमिन, नाइट्रेस ऑक्साइड इत्यादि गैसें ओजोन परत को क्षति पहुँचाती है, इनका प्रयोग रेफ्रिजरेटरों, शीतलन उपकरणों, अग्निशमन प्रणालियों इत्यादि में किया जाता है

जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणाम

बढ़ते तापमान के कारण ग्लेशियर पिघल रहे है हिमालय के ग्लेशियर प्रतिवर्ष 8 से 64 मीटर की दर से सिकुड़ रहे है किलीमंजारो के ग्लेशियर 1910 से 2005 की अवधि में 80 : पिघलकर गायब हो गए है वास्तव में अब वैश्विक स्तर पर हिमनदों पर खतरा मँडराने लगा है ये हिमनद हमारे जल आपूर्ति के सतत् स्त्रोत होने के अलावा जलवायु के चक्र में भी अहम् भूमिका निभाते है ग्लेशियर पिघलने से सबसे प्रत्यक्ष प्रभाव के रूप में समुद्र का जलस्तर बढ़ेगा। समुद्र के जलस्तर में महज 4 इंच की वृद्वि से जापान, चीन, फिजी, इण्डोनेशिया, मॉरीशस, मालदीव, श्रीलंका, फिलीपिंस एवं न्यूजीलैण्ड आदि देशों के कई द्वीप जलग्मन हो जाएंगे, आईपीसीसी के अनुसार यदि विश्व की जलवायु इसी प्रकार गर्म हाती रही, तो वर्ष 2100 तक पूरा मालदीव देश समुद्र में डुब जायेगा। भारत में तटीय क्षेत्र के लगभग 2 लाख गाँव इससे प्रभावित हो सकते है।

जलवायु परिवर्तन के कारण विश्वभर में वर्षण प्रतिरूप में व्यापक परिवर्तन देखने को मिल रहा है भारत में मानसून का पश्चिम तथा उत्तर पश्चिम की और शिफ्ट होना इसका ज्वलन्त उदाहरण है, वैज्ञानिकों के अनुसार प्राकृतिक जल चक्र की निश्चित प्रक्रिया में मामूली सी भी हेर–फेर अत्यधिक सूखे या बाढ़ की स्थिति खड़ी करता है इन परिवर्तनों से टाइफून, टॉरनेडो या हरिकेन चक्रवात न केवल अत्यधिक शक्तिशाली हो जाएंगे, बल्कि इनकी पुनरावृत्ति में भी वृद्धि होगी जलवायु परिवर्तन का घातक प्रभाव कृषि पर भी पड़ेगा अफ्रीका के मरूस्थलीय क्षेत्रों में धूलभरी आँधियों की तीव्रता बढ़ने से कृषि योग्य भूमि रेत के टीलों में बदल जायेगी। तापमान वृद्धि के कारण गेहूँ की उपज में भारतीय उपमहाद्वीप में 5 से 10ः तक की गिरावट आ सकती है जलवायु परिवर्तन से बीमारियाँ भी बढ़ेगी डेंगू अब हर साल की बात बन गया है इसी तरह दूसरी बीमारियों का प्रकोप बढ़ने की भी आशंका है, इस प्रकार जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणामों ने समूचे जैव जगत् के लिए खतरे की घण्टी बजा दी है, अगर हम अब भी नहीं सँभले तो शायद बहुत देर हो जाएगी चुनौती हर रोज ज्यादा बड़ी होती जा रही है।

जलवायु परिवर्तन पर विश्व की चिंताएँ

स्टॉकहोम सम्मेलन 1972 – संयुक्त राष्ट्र संघ की अगुवायी में पृथ्वी के समग्र पर्यावरण पर सम्मेलनों के माध्यम से व्यापक विचार–विमर्श करने की शुरूआत 1972 में स्टॉकहोम सम्मेलन से हुई 1972 के स्टॉकहोम सम्मेलन ;5 जून,1972द्ध में जागरूकता बढ़ाने तथा पृथ्वी के साथ भावनात्मक लगाव प्रदर्शित करने के उद्देश्य से 'केवल एक पृथ्वी' का उदेश्य अंगीकार हुआ इसी सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम ;न्छम्द्ध का जन्म हुआ । 5 जून को पर्यावरण दिवस मनाने की घोषणा इसी सम्मेलन में की गई इसी सम्मेलन के बाद भारत में 'प्रोजेक्ट टाइगर' चलाने के निर्णय लिए गए और वायु प्रदुषण से सम्बन्धित कानून बनाए गए।

बेलग्रेड कान्फ्रेंस 1975 – संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम द्वारा सन् 1975 में 'बेलग्रेड कान्फ्रेंस' का आयोजन हुआ इसी सम्मेलन में प्रत्येक देश ने अपनी–अपनी पर्यावरण नीति बनाने का भी निर्णय लिया, बिगड़ते जलवायु को संतुलित करने के लिए देश में उपलब्ध भूमि भाग में 33 प्रतिषत वन क्षेत्र की अनिवार्यता भी यहीं पर प्रस्तावित की गई।

नैरोबी कान्फ्रेंस 1982 – 1982 में नैरोबी में स्टॉक होम सम्मेलन की 10वीं वर्षगाठँ मनाने के लिए विश्व समुदाय पुनः एकत्रित हुआ तथा 'नैरोबी घोषणा–पत्र' को पारित किया। इसमें स्टॉकहोम सम्मेलन के विचारों एवं कार्यक्रमों को ही आत्मसात् किया गया

ओजोन परत संरक्षण के वैश्विक प्रयास

जलवायु परिवर्तन के महत्वपूर्ण घटक ओजोन क्षरण को रोकने की शुरूआत 1972 के स्टॉकहोम सम्मेलन से हुई। इस सम्मेलन में सैकड़ो सुपर सोनिक विमानों द्वारा ओजोन परत को होने वाली क्षति पर ध्यान देने का निर्णय लिया गया। ओजोन परत की क्षति के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पहली कार्यवाही के रूप में 1977 में वाशिंगटन में 32 देशों की बैठक हुई, जिसमें ओजोन परत की सुरक्षा के लिए एक कार्य योजना को अपनाया गया। अंटार्कटिका के ऊपर स्थित ओजोन परत की भारी क्षति के बारे में जानकारी 1985 के वियना सम्मेलन में दी गई संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के द्वारा आयोजित इस सम्मेलन में निर्णय लिया गया था कि विश्व के सब देश ओजोन क्षरण से मनुष्य के स्वास्थय और पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों की सूचना का आदान–प्रदान करेंगें।

मांट्रियाल प्रोटोकॉल 1987

ओजोन परत को बचाने की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण समझौता 16 सितम्बर, 1987 का मांट्रियाल कनाडा में हुआ। ओजोन परत को बचाने के लिए यह पहला अन्तर्राष्ट्रीय समझौता था, जो 16 सितम्बर को हस्ताक्षरित हुआ था, अतः 16 सितम्बर को वर्ष 1995 से विश्व ओजोन दिवस के रूप में मनाया जाने लगा । इस प्रोटोकॉल में क्लोरोफ्लोरो कार्बन ;ब्व्ब्द्ध के उत्पादन एवं खपत में अगले 10 वर्षों में पर्याप्त कटौती तथा हैलोजन गैस के उत्पादन एवं खपत को पूरी तरह से समाप्त करने पर सहमति हुई थी मांट्रियाल समझौते में निम्न संशोधन हुए।

लंदन संशोधन (1990)

मांट्रियाल समझौते में लिए गए निर्णयों से विकासशील देशों को आश्वस्त करने के लिए संशोधन किया गया। लंदन संशोधन द्वारा ओजोन गैसों का प्रयोग बन्द कर दिया गया।

कोपेनहेगन सम्मेलन (1992)

इस संशोधन में पहले विकसीत और विकासशील देशों के लिए अलग–अलग समयावधि निर्धारित की गई इसके अनुसार, ऐसे विकासशील देश जहाँ ओजोन हानिकारक पदार्थों की खपत प्रतिव्यक्ति 300 ग्राम से कम है, उन्हें विकसित देशों की अपेक्षा उन रसायनों का इस्तेमाल खत्म करने के लिए दस वर्ष से अधिक का समय दिया गया।

भारत ने इस समझौते पर 1992 में हस्ताक्षर किए भारत के दबाब के कारण इसमें एक अनुच्छेद 5 जोड़ा गया। इस अनुच्छेद के अनुसार, हानिकारक पदार्थों के प्रतिव्यक्ति 300 ग्राम खपत वाले देशों में इन पदार्थों के प्रयोग को बन्द किया जायेगा तथा तकनीकी हस्तांतरण के व्यय को विकसीत देशों द्वारा वहन किया जाएगा।

16 सितम्बर, 2002 को विश्व ओजोन दिवस पर संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम और विश्व मौसम संगठन ने अपनी जारी रिपोर्ट में बताया कि ओजोन परत में बना छेद अब भरने लगा है, परन्तु ओजोन परत की सुरक्षा हेतु उठाए ये कदम पर्याप्त नहीं थे आज भी पर्यावरण का नुकसान पहुँचाने वाले पदार्थों और रसायनों का सबसे ज्यादा उत्पादन एवं इस्तेमाल हो रहा है यही कारण है कि आज जब वर्ष 2009 में मांट्रियाल प्रोटोकॉल के क्रियान्वयन की 20वीं वर्षगाँठ मनाई जा रही है पुनः 2009 में ओजोन परत में 5वाँ सबसे बड़ा सुराख मिला है इस प्रकार ओजोन परत का सुराख 262 वर्ग किमी. से 272 वर्ग किमी. पहुँच गया है, जबकि 2002 में ओजोन परत की मरम्मत का सुखद समाचार मिला था।

रियो सम्मेलन – 1992

1992 में ब्राजील के शहर रियोडिजेनेरियों में बहुचर्चित पृथ्वी–1 सम्मेलन आयोजित हुआ इस सम्मेलन के सहयोग व उत्साह भरे माहौल में विश्व के लगभग 130 राष्ट्रों ने शिकायत की। रियो का शीर्षक था–'पृथ्वी बचाओं सम्मेलन' रियो सम्मेलन में दिखी भावना आज भी रियों भावना' के रूप में याद की जाती है इस सम्मेलन की 2 खास उपलब्धियाँ रहीं –

वैश्विक पर्यावरण सुविधा (Gee)

रियो के पृथ्वी बचाओं सम्मेलन में ळम्म की स्थापना विश्व बैक, द्वारा स्थापित होना तय हुआ, इसमें विभिन्न देशों को चार क्षेत्रों–विश्वव्यापी तापमान में वृद्धि रोकने, ओजोन संरक्षण, जैव विविधता संरक्षण, जल संरक्षण कार्यक्रम चलाने में सहायता आदि तय हुआ।

एजेण्डा 21 21वीं सदी में हमारा आचार व्यवहार किस प्रकार हो, इसके लिए 21 सूत्रीय एजेण्डा स्वीकृत किया गया, यह देशों पर बाध्यकारी नहीं है केवल उनसे आश्वासन लिया गया कि वे अपनी नीतियों एवं कार्यक्रमों का निर्धारण एजेण्डा–21 के अनुरूप करेंगे उल्लेखनीय है कि इन दोनों पर आज तक कोई खास प्रगति नहीं हुई है।

जलवायु परिवर्तन की समस्या से निपटने के लिए औपचारिक अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास–यूएनएफसीसी (Unfcc)

जलवायु परिवर्तन की समस्या से निपटने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों की औपचारिक शुरूआत जून 1992 में रियो डि जेनेरिया में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण एवं शिखर सम्मेलन से हुई। सम्मेलन में आज सहमति से जलवायु परिवर्तन पर पहली बहुपक्षीय विधिक व्यवस्था यूएन फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लाइमेट चेंज अर्थात् यूएन एफसीसी (संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन अभिसमय) को अंगीकार किया गया। जलवायु परिवर्तन पर बाद में जितनी भी बहुपक्षीय वार्तायें हुई, वे सभी यूएनएफसीसी द्वारा निर्धारित सिद्धान्तों और उद्देश्यों पर आधारित थी, चाहे वे जलवायु परिवर्तन के किसी भी आयाम से सम्बन्धित हो।

क्योटो प्रोटोकॉल–1997

पृथ्वी बचाओं सम्मेलन के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वाधान में यूएनएफसीसी के अन्तर्गत विश्व मौसम परिवर्तन सम्मेलनों अर्थात् कोन्फ्रेंस ऑफ पार्टिज (कॉप श्रृंखला) की श्रृखंला चलती रही 'कॉप' श्रृखला का पहला सम्मेलन अप्रैल 1995 में जर्मनी के बर्लिन शहर में आयोजित किया गया, इस श्रृंखला में 1 दिसम्बर से 11 दिसम्बर, 1997 तक जापान के शहर क्योटो में आयोजित कॉप–3 विशेष रूप से उल्लेखनीय है इस सम्मेलन के अन्त में क्योटो प्रोटोकॉल की ऐतिहासिक घोषणा की गई, इसमें 6 गैसों कार्बनडाइऑक्साइड (CO_2), नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O), मिथेन (CH_4), हाइड्रोक्लोरोकार्बन (HFC), परफलोरोकार्बन (PFC), एवं सल्फर हेक्सा फ्लोराइड (CF_6), को बास्केट एप्रोच के अन्तर्गत चिह्नित किया गया, इस क्योटो प्रोटोकॉल में उपयुक्त G6, ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में 1990 के स्तर पर 5.2ः कटौती, वर्ष 2012 तक करने की ै। सहित 38 विकसित देशों द्वारा प्रतिबद्धता व्यक्त की गई। ग्रीन हाउस गैसों के प्रभाव को कम करने के लिए क्योटो प्रोटोकॉल के अन्तर्गत निम्न तीन महत्वपूर्ण निर्णय लिये गये।

उत्सर्जन व्यापार

इसके अन्तर्गत केवल विकसित राष्ट्र अपने निर्धारित कार्बन लक्ष्य से अधिक मात्रा में ग्रीन हाउस गैसों की कटौती का आपस में व्यापार कर सकते है।

संयुक्त संचालन

इसके अन्तर्गत केवल विकसित राष्ट्र एक–दूसरे के यहाँ ग्रीन हाउस गैसों की कटौती से सम्बन्धित परियोजनाओं में व्यय कर सकते है तथा इस प्रकार प्राप्त कटौती से अपने लक्ष्यों की संयुक्त रूप से प्राप्ति कर सकते है।

स्वच्छ विकास प्रक्रिया

इस प्रक्रिया के अन्तर्गत विकसित राष्ट्र विकासषील राष्ट्रों में ऐसी परियोजनाओं को आर्थिक सहायता देकर, जिनसे वायुमण्डलीय कार्बनडाई आक्साइड अवषोषित या विस्थापित की जा सके, अपने निर्धारित कार्बन लक्ष्यों की पूर्ति कर सकते है। इस प्रक्रिया से जहाँ विकासषील राष्ट्र आर्थिक सहायता प्राप्त कर अपने यहाँ नवीन तकनीक का प्रयोग कर जहाँ पर्यावरण सुधार की दिषा में कार्य कर सकते है वहीं आर्थिक सहायता देने वाले विकसित राष्ट्र इन परियोजनाओं से प्राप्त परियोजनाओं के लाभ को अपने लक्ष्यों की पूर्ति में बदल सकते है।

जोहान्सबर्ग सम्मेलन – 2002

2002 में जोंहान्सबर्ग में सतत् विकास हेतु पृथ्वी–ण् सम्मेलन का आयोजन इस सम्मेलन का मुख्य मुद्दा स्वच्छता, ऊर्जा, स्वास्थ्य, कृषि तथा जैवविविधता व पारिस्थितिकी थे, इसमें प्रथम बार पर्यावरण हेतु व्यापारिक संगठनों के प्रभावी हस्तक्षेप की भूमिका महसूस की गई यह शिखर सम्मेलन के 10 वर्ष बाद हुआ। इसमें अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय को इस बात का मूल्यांकन करने का अवसर मिला कि क्या कार्यसूची–21 में उल्लेखित लक्ष्यों को प्राप्त कर लिया गया है, परन्तु जोंहान्सबर्ग सम्मेलन में 'रियों भावना' में कमी दिखी।

क्योटो के बाद की वैश्विक स्थिति

प्रारम्भ में अमेरीका और ऑस्ट्रेलिया के मुखर विरोध तथा रूस के उदासीन रवैये के मध्य यूरोपीय संघ द्वारा विकासशील देशों के साथ मिलकर ग्लोबल वार्मिंग रोकने सम्बन्धी क्योटो प्रोटोकॉल को प्रभावी बनाने के पक्ष में गम्भीर मुहिम चलाई गई इसका परिणाम रहा कि यूरोपीय देशों सहित रूस, चीन, कनाडा इस प्रोटोकॉल के अनुमोदन पर सहमत हो गए। ै। ने मार्च 2001 में जिस प्रकार इस संधि को मानने से इन्कार कर दिया था, उससे इस संधि का क्रियान्वयन भी असम्भव हो गया था, क्योंकि अमेरीका ही ग्रीन हाउस गैसों का सबसे बड़ा उत्सर्जक है लेकिन जापान एवं रूस के अनुमोदन के कारण यह संधि 16 फरवरी, 2005 से लागू हो गई, ऑस्ट्रेलिया के नव–निर्वाचित केबिन रूस सरकार के 3 दिसम्बर, 2007 को क्योटो संधि पर हस्ताक्षर करने के बाद अमेरीका एक मात्र विकसित देश है, जिसने इस संधि पर हस्ताक्षर नहीं किए है।

जलवायु परिवर्तन पर बाली सम्मेलन–2007

जलवायु परिवर्तन के बढते खतरे से निपटने के लिए संयुक्त राष्ट्र के तत्वाधान में इण्डोनेशिया के बाली द्वीप के नुसा–दुआ में सयुक्त राष्ट्र पर्यावरण सम्मेलन 3–14 दिसम्बर, 2007 तक आयोजित किया गया, सम्मेलन के 13 वें दिन तक सहमति के आधार नहीं थे ग्लोबल वार्मिंग में सबसे ज्यादा योगदान देने वाला ै। अड़ा हुआ था कि कौनसा देश कितना कार्बन उत्सर्जन कम करेगा उसे उस देश पर छोड़ देना चाहिए। यूरोपीय संघ को आपत्ति भारत और ळ.77 के रूख को लेकर थी उसे लगता था, कि इन देशों के दबाव के चलते समझौते में विकासशील देशों के प्रति अपेक्षित सख्ती नहीं दिखाई जा रही है, लेकिन आखिरी दिन सहमति बन ही गई। इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य 2012 में समाप्त हो रहे क्योटो संधि के स्थान पर एक नई संधि की रूपरेखा तैयार करने हेतु एक रोडमैप तैयार करना था, जो सफल रहा।

ग्रीन टेक्नोलॉजी हस्तांतरण पर विवाद

G-8 के लाकीला सम्मेलन (2009) में विकासशील देशों ने विकसित देशों से यह माँग की, कि विकसित देश पर्यावरण के अनुकूल तकनीक ओर ग्रीन फंड उपलब्ध कराए।

बान की मून ने भी ळ.8 के सदस्यों से अपील की, कि उनकी यह ऐतिहासिक तथा राजनीतिक जिम्मेदारी है, कि वे आर्थिक तथा तकनीकी रूप से कार्बन उत्सर्जन से निजात पाने में विकासशील देशों की मद्द करें, ध्यातव्य है कि विकासशील देशों को कार्बन उत्सर्जन में कमी लाने के लिए अद्यतन आधुनिक ग्रीन टेक्नोलॉजी की आवश्यकता है जिस पर करीब सौ खरब डॉलर की जरूरत होगी जिसके लिए विकसित देश हाथ पीछे खींच रहे है।

जलवायु परिवर्तन

कोपेनहेगन पर टिकी उम्मीदें (दिसम्बर 2009) डेनमार्क की राजधानी कोपेनहेगन में 7–18 दिसम्बर 2009 को हुई क्लाइमेट चेंज कान्फ्रेंस में जलवायु परिवर्तन के खतरों से निपटने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक समझौता हुआ। इसका एजेंडा यह है कि इसमें विकसित और औद्योगिक राष्ट्र 2020 तक ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में भारी कटौती लाने की घोषणा करें तथा विकासषील और गरीब देषों को इन खतरों से निपटने के लिए आर्थिक एवं तकनीकी मदद का ऐलान करें। इस राजनीतिक समझौते को 2010–11 में एक अन्तर्राष्ट्रीय संधि का रूप दिया जाएगा। अन्ततः यह संधि 2012 में समाप्त हो रही क्योटो प्रोटोकॉल का स्थान ले लेगी तथा 2013 से लागू हो जाएगी।

कोपेनहेगन में भारत का रूख

भारत का रूख साफ है कि जब तक औद्योगिक ओर विकसित राष्ट्र अपनी उपर्युक्त जिम्मेदारी को नहीं निभाते वह कोपेनहेगन जैसे किसी समझौते पर हस्ताक्षर कर उत्सर्जन में कमी लाने की कोई भी कानूनी बाध्यता स्वीकार नहीं करेगा। ऐसी किसी कानूनी बाध्यता से देष के औद्योगिक विकास को झटका लग सकता है। देष की समझ में पर्यावरण से भी बड़ी चुनौती गरीबी से निपटना है।

वन एवं पर्यावरण मंत्री जयराम रमेष के अनुसार

भारत स्वेच्छा से ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी लाने का प्रयास करेगा। इसका तात्पर्य है कि भारत विष्व मंच पर ग्रीन हाउस गैसों में कमी लाने के लिए कोई कानूनी प्रतिबद्धता स्वीकार नहीं करेगा। लेकिन देष में ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी लाने के लिए अपने स्तर पर प्रयास करेगा। इस कड़ी में भारत ने 18 नबम्बर, 2009 को वायु प्रदूषण के मानकों को यूरोपीय यूनियन की भाँति कड़ा बना दिया है। पहले भारत में तीन श्रेणी के प्रदूषण मानक थे। एक आवासीय दूसरे औद्योगिक तथा तीसरा संवेदनषील। जैसे ताजमहल क्षेत्र, इन नए मानकों से भारत में कुल ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन घटेगा तथा उद्योगों को ग्रीन टेक्नालॉजी पर निवेष बढ़ाना होगा।

यदि अभी से भारत कार्बन इकोनॉमी की परिकल्पना पर अमल शुरू कर दे, तो भविष्य मे हमारी स्थिति चीन जैसी नहीं होगी जिसने पिछले कुछ दषकों में औद्योगिक प्रगति तो कि, लेकिन उत्सर्जन में गम्भीर नहीं रहा। फलतः चीन आज दूनिया में सबसे बड़े प्रदूषणकारी राष्ट्र के रूप में जाना जाता है इसलिए स्वेच्छा से ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन में कटौती की घोषणा भारत की दूरगामी पहल है। भारत की यह पहल उसे जलवायु परिवर्तन के खतरों से निपटने के प्रयासों में वैष्विक नेतृत्व प्रदान कर सकती है।

कोपेनहेगन सम्मेलन : सफलता की सम्भावनाएं

अब जब कुछ ही दिन बचे है, तो देखें कि कोपेनहेगन कॉन्फ्रेस को लेकर क्या स्थिति है ? एक तरफ तो वे देश है जिन पर जलवायु परिवर्तन का खतरा मंडरा रहा है वे चाहते है कि अब देर न हो, दूसरे भारत जैसे वे देश है, जो भावी जरूरतों के पक्षधर तो है, लेकिन उनकी

अपनी मजबूरियाँ है, ये देश चाहते है की धनी देश पहल करें, तो वह साथ देगे, तीसरी श्रेणी में कम प्रदूषण फैलाने वाले धनी देश है, जो चाहते है कि इस समस्या का हल निकाला जाना चाहिए। चौथे 37 औद्योगिक राष्ट्र है, जो हरित गैसों का सबसे ज्यादा उत्सर्जन कर रहे है और इसमें कमी लाने की जिम्मेदारियों से बच रहे है, इनमें सबसे बडे प्रदूषणकारी राष्ट्रों का रूख साफ नहीं है।

निष्कर्ष

इसे विडम्बना कहा जाए अथवा दुर्भाग्य है कि जलवायु परिवर्तन के उत्तरदायित्व निर्धारण के सम्बन्ध में इतने पुष्ट प्रमाणों और अधिसंख्य देशों के इतने दबाव के बाद भी सामान्यतया धनी और विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों को इसके लिए जिम्मेदार बताया जा रहा है, जबकि वास्तविक यह है कि जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग के लिए सबसे बडे दोषी अधिकांश विकसीत देश ही हैं।

ग्लोबल वार्मिंग के चलते द्वीपिय राष्ट्रों के जलमग्न होने की आशंका बहुत पहले से व्यक्त की जाती रही है, लेकिन अब यह हकीकत बनकर सामने आने लगी है, पापुआ न्यूगिनी का काटेरेट्स द्वीप ग्लोबल वार्मिंग का पहला शिकार बन चुका है।

अतः अब आवश्कता इस बात की है कि जिम्मेदारी निर्धारित करने और आरोप प्रत्यारोप से हटकर इस वैश्विक आपदा को मिलकर हल करने के लिए प्रभावी प्रयास कियें जाऐं और विशेष रूप से विकसित देशों के अतिरिक्ति शेष विश्व के अन्य देशों को एकजूट होकर इस मुद्दे को और प्रभावी ढंग से उठाने और इस पर काबू पाने की रणनीति तैयार कर उस पर दृढ़तापूर्वक अमल करने पर जोर दिया जाए ताकि नई पीढ़ी और आने वाली पीढ़ियों को जलवायु परिवर्तन की भयंकर त्रासदी को झेलने से बचाया जाना सम्भव हो।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Gerasimov, I.P. (1983) : Geography and Ecology, Progress Pub. Moscow.
2. Glan, L.A. & Rhoda, L.M. (eds) (1970) : Ecological Crisis Readings for Survival, Harcourt Brace Jovanovich, N. York.
3. Hageett, P. (1972) : Geography-A Modrn Synthesis, Harper & Row, London.
4. Odum, Eugene, P. (1971) : Fundamentals of Ecology, W.B. saunders Co. London.
5. Pfajjlin, J.R. & Ziegler, E.N. (eds) (1976) : Encyclopaedia of Environmental Science & Engineering Vo.l. I & II Gordon & Breach Science Pub., New York.
6. Rao, K.L. (1975) : India"s Water Wealth, Orient Longman, N. Delhi.
7. Seshadri, B. (1969) : The Twilight of India's Wild Life, Oxford, London.
8. Sharma, H.S. (eds) (1988) : Elements Design and Development, Scientific Pub., Jodhpur.
9. Singh, L.R. (eds) & Other (1983) : Environmental Management Allahabad Geog. Society, Allahabad.
10. Singh, savindra & Tiwari, R.C. (eds.) (1989) : Geomorphology and Enironment Allahabad Geog, Scienty, Allahabad.
11. Smith, G.H. (eds) (1965) : Conservation of Natural Resources, New York.
12. Stoddard, D.R. (1965) : Geography and the Ecological Approach, Geography, Vol. 50, pp. 242-51.
13. Strahler, A.N. & Strahler, A.H. Thomos, W.L. (1976) : Grography and Man's Environment, John Wiley, N. York.
14. Taylor, G. (1967) : Geography in the 20th Century, Methuen, London.
15. अरूण रधुवंशी और चन्द्रलेखा रधुवंशी (1987): पर्यावरण तथा प्रदूषण, म. प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
16. हरिशचन्द्र व्यास (सं.) (1989): जनसंख्या प्रदूषण एवं पर्यावरण विद्याविहार, नई दिल्ली।
17. वी. के. श्रीवास्तव एवं राव (1991): पर्यावरण और पारिस्थितिकी, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।
18. पी.एस. नेगी (1990): पारिस्थितिकी विकास एवं पर्यावरण भूगोप, रस्तोगी, मेरठ।
19. Pfajjlin, J.R. & Ziegler, E.N. (eds) (1976) : Encyclopaedia of Environmental Science & Engineering Vo.l. I & II Gordon & Breach Science Pub., New York.
20. Rao, K.L. (1975) : India"s Water Wealth, Orient Longman, N. Delhi.
21. Seshadri, B. (1969) : The Twilight of India's Wild Life, Oxford, London.
22. Sharma, H.S. (eds) (1988) : Elements Design and Development, Scientific Pub., Jodhpur.
23. Singh, L.R. (eds) & Other (1983) : Environmental Management Allahabad Geog. Society, Allahabad.
24. Singh, savindra & Tiwari, R.C. (eds.) (1989) : Geomorphology and Enironment Allahabad Geog, Scienty, Allahabad.
25. Smith, G.H. (eds) (1965) : Conservation of Natural Resources, New York.
26. Stoddard, D.R. (1965) : Geography and the Ecological Approach, Geography, Vol. 50, pp. 242-51.
27. Strahler, A.N. & Strahler, A.H. Thomos, W.L. (1976) : Grography and Man's Environment, John Wiley, N. York.
28. Taylor, G. (1967) : Geography in the 20th Century, Methuen, London.
29. अरूण रधुवंशी और चन्द्रलेखा रधुवंशी (1987): पर्यावरण तथा प्रदूषण, म. प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
30. हरिशचन्द्र व्यास (सं.) (1989): जनसंख्या प्रदूषण एवं पर्यावरण विद्याविहार, नई दिल्ली।
31. वी. के. श्रीवास्तव एवं राव (1991): पर्यावरण और पारिस्थितिकी, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।
32. पी.एस. नेगी (1990): पारिस्थितिकी विकास एवं पर्यावरण भूगोप, रस्तोगी, मेरठ।